कलकत्ता सुधार के न्यासी

बनाम

चन्द्र शेखर मलिक और अन्य

(The Trustees for the Improvement of Calcutta

Vs.

Chandra Sekhar Mallick and Others)

(6 मई, 1977)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, एन० एल० ऊंटवालिया, एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली और पी० के० गोस्वामी)

कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ऐक्ट, 1911—धारा 78-बी से लेकर 78-जी और कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट रूल्स, नियम 11 से 21—(सपठित संविधान—अनुच्छेद 14)—मार्ग स्कीम के कार्यान्वियन के कारण भूमि के मूल्य में वृद्धि की बाबत प्रत्यर्थी से सुधार फीस की मांग की जाना—उक्त धाराएं और नियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य हैं।

संविधान—अनुच्छेद 14—विधायी शक्ति का प्रत्यायोजन (सपठित कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ऐक्ट, 1911, धारा 78-बी से 78-जी और कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट रूल्स—नियम 11 से 21)—मार्ग स्कीम के कार्यान्वियन के कारण भूमि के मूल्य में वृद्धि की बाबत प्रत्यर्थी से सुधार फीस की मांग की जाना—उक्त धाराएं और नियम सांविधानिक रूप से विधिमान्य है क्योंकि विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन नहीं किया गया है।

प्रत्यर्थियों के कलकत्ता में लोअर सर्कुलर रोड और मैकलाइड स्ट्रीट में मकान हैं। कलकत्ता सुधार न्यास बोर्ड ने कलकता इम्प्रूवमेण्ट ऐक्ट 1911 की धारा 39 के खण्ड (सी) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए उन क्षेत्रों की बाबत जिनमें प्रत्यर्थियों के मकान स्थित

हैं एक मार्ग स्कीम की एक सूचना प्रकाशित कराई थी। प्रत्यर्थियों द्वारा उस स्कीम के विरुद्ध आक्षेप की सुनवाई करने के पश्चात वे आक्षेप नामंजूर कर दिए गए और वह स्कीम राज्य सरकार ने मंजूर कर दी। बोर्ड ने मार्ग स्कीम के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप उन्हें यह सूचना दी कि उनकी भूमियों के मूल्य में वृद्धि की बाबत उनके द्वारा सुधार फीस संदेय होगी और प्रत्यर्थियों पर अलग-अलग सुधार फीस का निर्धारण किया गया। प्रत्यर्थियों ने निर्धारण से विसम्मति प्रकट की और धारा 78बी की उपधारा (4) के अनुसार वह मामला मध्यस्थों को निर्देशित किया गया। मध्यस्थों ने दोनों स्थानों पर स्थित मकानों के बारे में कतिपय अलग-अलग सुधार फीस अवधारित की। प्रत्यर्थियों ने हर एक मामले में मध्यस्थों द्वारा दिए गए पंचाट पर आक्षेप करते हुए रिट पिटीशन फाइल किया जिसके मुख्य आधार यह है कि धारा 78-ए से लेकर 78जी अधिकारातीत और शून्य हैं और नियमों के नियम 1 से लेकर 21 भी अविधिमान्य हैं। उच्च न्यायालय ने धारा 78बी से लेकर 78जी तक को और नियम 11 से 21 को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया। इस निर्णय की शुद्धता पर उच्च न्यायालय से प्रमाणपत्र अभिप्राप्त करके कलकता सुधार के न्यासियों द्वारा की गई प्रस्तुत अपीलों में आक्षेप किया गया है। अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—इन नियमों की विधिमान्यता का निर्णय इस प्रश्न के प्रति निर्देश करके करना होगा कि क्या वे धारा 137 के खण्ड (3ए) के अधीन प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के प्रविषय के भीतर आते हैं न कि ऐसी किसी राय के आधार पर जो कलकता इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट मैन्युअल के लेखक ने व्यक्त की हो। जब यह बात सन्देह के परे स्पष्ट हो जाती है कि धारा 137 का खण्ड (3ए) राज्य सरकार को धारा 78सी के अधीन मध्यस्थों की कार्यवाही को विनियमित करने वाले नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है और नियम 11 से लेकर 21 सहज रूप से उस प्रवर्ग के भीतर आते हैं तो यह बात समझ नहीं आती कि उनके बारे में यह ठहराना किस प्रकार सम्भव है कि वे राज्य सरकार को प्रदत्त की गई नियम बनाने की शक्ति से बाहर हैं। राज्य सरकार ने विमर्शित रूप से और प्रकट रूप से धारा 137 के खण्ड (3ए) के अधीन अपनी नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग किया है और मध्यस्थों की कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए नियम 11

से लेकर 21 तक बनाए हैं। उच्च न्यायालय ने धारा 86 के प्रति भी निदेश किया और नियम 11 से लेकर 21 को इस आधार पर अविधिमान्य ठहराया है कि वे तात्पर्यित रूप से धारा 86 के अधीन नहीं बनाए गए हैं। जिस एकमात्र उपधारा के अधीन उच्च न्यायालय के अनुसार, धारा 78 ए से लेकर धारा 78 जी के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाए जा सकते थे किन्तु धारा 86 के प्रति निर्देश स्पष्टतः भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि वह धारा "इस अध्याय के प्रयोजनों" को पूरा करने के लिए नियम बनाने की शक्ति राज्य सरकार को प्रदत्त करती है और धारा 86 अध्याय 5 में होने के कारण "इस अध्याय" शब्दों का निर्देश केवल अध्याय 5 के प्रति हो सकता है न कि अध्याय 4 के प्रति जिसमें धारा 78–ए से लेकर धारा 78जी हैं। अतः प्रकटतः धारा 78ए से लेकर धारा 78जी के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए धारा 86 के अधीन कोई नियम नहीं बनाए जा सकते थे। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाने में स्पष्ट रूप से भूल की है कि नियम 11 से लेकर 21 ऐक्ट के अधिकारातीत हैं। (पैरा 6)

ऐसे प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यह समझा कि इन धाराओं में विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है। यह कहना सही नहीं है कि स्कीम के कार्यान्वयन के लिये अपेक्षित भूमि के अलावा बोर्ड और/अथवा इसके कर्मचारियों को यह विनिश्चित करने का अनियंत्रित और मनमानी विवेकाधिकार दिया गया है कि स्कीम में कौन सी भूमि सम्मिलित की जानी चाहिये। स्कीम में सम्मिलित किये जाने के लिये भूमि का चुनाव करने में बोर्ड को न केवल मार्गदर्शन दिया जाता है बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कीम में कोई भूमि मनमाने तौर पर अथवा स्वेच्छापूर्वक न ली जाए, सुरक्षापायों का भी उपबन्ध किया गया है। स्कीम के अधीन भूस्वामी को धारा 78ए से लेकर धारा 78 जी के अधीन इस प्रश्न का दो स्वतन्त्र मध्यस्थों के निकाय द्वारा अवधारित कराने का अवसर दिया जाता है जो वस्तुपरक रूप से यह अवधारित करेंगे कि क्या स्कीम में मिलाए जाने के परिणामस्वरूप भूमि के मूल्य में कोई वृद्धि हुई है। ये सुसंगत उपबन्ध है, अतः यह समझ पाना कठिन है कि धारा 78-ए से लेकर धारा 78-जी के बारे में यह कैसे माना जा सकता है कि उनमें विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है। संविधान के अनुच्छेद 14

1977(5) eILR(PAT) SC 365

के प्रतिसंदर्भ के आधार पर इन धाराओं की विधिमान्यता के विरुद्ध की गई आपत्ति भी विफल हो जाती है क्योंकि अनुच्छेद 14 के अधीन आपत्ति विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार पर है। (पैरा 7)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1976 की सिविल अपील संख्या 579-580.

1964 के सिविल विनिर्णय संख्या 4110 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 1 दिसम्बर, 1972 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री पी० के० चटर्जी, जी० एस० चटर्जी और डी० पी० मुखर्जी
प्रत्यर्थियों की ओर से (1976 की सिविल अपील संख्या 579 में) **प्रत्यर्थी संख्या 1 (ए) से 1 (आई), 3 और 4 की ओर से** (1976 की सिविल अपील संख्या 580 में)	श्री पी० के० मुखर्जी

अभिलेख अधिवक्ता

अपीलार्थी की ओर से (दोनों अपीलों में)	श्री जी० एस० चटर्जी
प्रत्यर्थियों की ओर से (1976 की सिविल अपील संख्या 579 में) और **प्रत्यर्थी संख्या 1 (ए) से 1 (आई), 3 और 4 की ओर से** (1976 की सिविल अपील संख्या 580 में)	श्री पी० के० मुखर्जी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने दिया।

न्यायाधिपति भगवती—

प्रमाणपत्र लेकर ये अपीलें कलकत्ता उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के उस निर्णय के विरुद्ध की गई हैं, जिसके द्वारा कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट ऐक्ट, 1911 की धारा 78-बी से 78-जी को विधायी

शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार पर और साथ ही संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर अविधिमान्य मानते हुए उच्छेदित कर दिया गया था और सरकार द्वारा धारा 137 की उपधारा (3-ए) के अधीन बनाए गए नियमों के नियम 11 से लेकर 21 के बारे में यह घोषणा की गई थी कि वे ऐक्ट के उपबन्धों के अधिकारातीत हैं। जिन तथ्यों से यह अपील उत्पन्न हुई हैं, वे बहुत संक्षिप्त हैं। उन का संक्षेप में इस प्रकार कथन किया जा सकता है।

2. 1976 की सिविल अपील संख्या 579 में के प्रत्यर्थी कलकत्ता में लोअर सर्कुलर रोड पर स्थित संख्या 35 वाले मकान के स्वामी हैं जबकि 1976 की सिविल अपील संख्या 576 में के प्रत्यर्थी कलकत्ता में मैकलाइड स्ट्रीट पर स्थित संख्यांक 1ए वाले मकान के स्वामी हैं। वहां पर फायर लेन के नाम से ज्ञात एक मार्ग है, जो पूर्व की ओर से लोअर सर्कुलर रोड से हो कर पश्चिम में मैकलाइड स्ट्रीट में मिलता है। नवम्बर, 1954 में अथवा उसके लगभग कलकत्ता सुधार न्यासी बोर्ड (जिसे इसमें इस के पश्चात् बोर्ड कहा गया है) ने धारा 39 के खण्ड (सी) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए आवश्यक संकल्प पारित किया और उस क्षेत्र के लिए एक मार्ग स्कीम (स्ट्रीट स्कीम) विरचित की जिस में फायर लेन और साथ ही प्रत्यर्थियों के मकान भी सम्मिलित थे। जैसा कि धारा 43 द्वारा अपेक्षित है, अपेक्षित विशिष्टयों वाली एक सूचना बोर्ड ने 24 नवम्बर, 1954 को प्रकाशित कराई। प्रत्यर्थियों ने 7 दिसम्बर, 1954 को मार्ग स्कीम के विरुद्ध अपने आक्षेप प्रस्तुत किए, किन्तु बोर्ड ने प्रत्यर्थियों की सुनवाई करने के पश्चात् आक्षेप नामंजूर कर दिए और धारा 47 के अधीन मंजूरी देने के लिए सरकार से आवेदन किया और वह मार्ग स्कीम राज्य सरकार द्वारा धारा 48 के अधीन अन्ततोगत्वा 17 दिसम्बर, 1965 को मंजूर कर दी गई। बोर्ड की यह राय थी कि मार्ग स्कीम बनाने के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थियों की भूमियों का जो मार्ग स्कीम में आता था, मूल्य बढ़ जाएगा और इस लिए मार्ग स्कीम में यह घोषणा थी कि मार्ग स्कीम के कार्यान्वियन के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थियों की अपनी-अपनी भूमियों के मूल्यों में वृद्धि की बाबत उनके द्वारा सुधार फीस संदेय होगी। बोर्ड ने धारा 78-बी की उपधारा (1) के अधीन प्रत्यर्थियों को प्रस्थापित सुधार फीस के निर्धारण की सूचना दी और उस के पश्चात् उस धारा की उपधारा (2) के अधीन प्रत्यर्थियों द्वारा संदेय

1977(5) eILR(PAT) SC 365

सुधार फीस के निर्धारण के लिए अग्रसर हुआ। लोअर सर्कुलर रोड पर स्थित सम्पत्ति के बारे में सुधार फीस 2,15,441 रुपये निर्धारित की गई थी जबकि मैकलाइड स्ट्रीट पर स्थित सम्पत्ति के बारे में वह 4,241 रुपये निर्धारित की गई थी और प्रत्यर्थियों को इस निर्धारण की सूचना दी गई थी। हर मामले में प्रत्यर्थियों ने उन पर किए गए निर्धारण से विसम्मति प्रकट की और उस पर वह मामला अवधारण के लिए धारा 78-बी की उपधारा (4) के अनुसार यथाअनुध्यात मध्यस्थों को निर्देशित किया गया था। मध्यस्थों की नियुक्ति धारा 78-सी में उपवर्णित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी और पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् मध्यस्थों ने 23 सितम्बर, 1964 को अपना पंचाट दिया जिसके द्वारा उन्होंने लोअर सर्कुलर रोड पर स्थित सम्पत्ति के बारे में संदेय सुधार फीस 1,25,000 रुपये और मैकलाइड स्ट्रीट पर स्थित सम्पत्ति की दशा में 4,241 रुपये अवधारित की। इस पर प्रत्यर्थियों ने हर एक मामले में मध्यस्थों द्वारा दिए गए पंचाट की विधिमान्यता पर आपत्ति करते हुए एक रिट पिटीशन फाइल किया।

3. मध्यस्थों के पंचाट की विधिमान्यता पर रिट पिटीशनों में जो आक्षेप किया गया था, उसका मुख्य आधार यह था कि ऐक्ट की धारा 78-ए से धारा 78-जी अधिकारातीत और शून्य हैं और नियमों के नियम 11 से 21 भी अविधिमान्य हैं। रिट पिटीशनों में कतिपय अन्य गौण आधार भी अपनाए गए थे, किन्तु वे हमारे समक्ष विचार विमर्श की वस्तु नहीं है और इसलिए हम उनके प्रति निर्देश नहीं करेंगे। यद्यपि रिट पिटीशन मध्यस्थों द्वारा पंचाट दिए जाने के पश्चात् 1964 में फाइल किए गए थे, दुर्भाग्यवश उच्च न्यायालय में उनकी सुनवाई जुलाई, 1971 तक नहीं हुई और उसके पश्चात् भी सुनवाई में पर्याप्त समय लगा और यह 17 अगस्त, 1971 को ही समाप्त हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि रिट पिटीशनों की सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय के ध्यान में यह बात लाई गई थी कि ऐक्ट की धारा 78-ए की सांविधानिक विधिमान्यता के सम्बन्ध में एक अन्य मामले अर्थात् 1969 के सिविल विनिर्णय संख्या 2156 में प्रश्न उठाया गया था और उस मामले की सुनवाई उच्च न्यायालय के एक अन्य खण्ड न्यायपीठ ने पहले ही की है और उसका निर्णय दिया जाना है। अतः उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशनों में निर्णय तैयार करने को रोक देने का और 1969 के सिविल विनिर्णय संख्या 2156 में अन्य

खण्ड न्यायपीठ के निर्णय की प्रतीक्षा करने का विनिश्चय किया। हमें यह ज्ञात नहीं है कि 1969 के सिविल निर्णय संख्या 2156 में निर्णय कब दिया गया था, किन्तु यह प्रतीत होता है कि उस खण्ड न्यायपीठ ने जिसने कि उस मामले की सुनवाई की धारा 78-ए की सांविधानिक विधिमान्यता पर निर्णय नहीं दिया और उस मामले को अन्य आधारों पर निपटा दिया। परिणाम यह हुआ कि उच्च न्यायालय को प्रस्तुत रिट पिटीशनों में धारा 78-ए से धारा 78-जी की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न का विनिश्चय करना पड़ा और इसमें 1 दिसम्बर, 1972 को अपना निर्णय दिया जिसके द्वारा धारा 78-बी से धारा 78-जी को और नियम 11 से 21 को अविधिमान्य रूप में खण्डित कर दिया। हम यह मत व्यक्त करने के लिये विवश हैं कि उच्च न्यायालय के निर्णय में असम्बद्ध और समुचित विचार का अभाव स्पष्टतः प्रतीत होता है, जो कि उस दशा में सम्भाव्य है जब कोई निर्णय तर्कों के समाप्त होने के 15 मास पश्चात् दिया जाता है। इस निर्णय की शुद्धता पर उच्च न्यायालय से प्रमाणपत्र अभिप्राप्त कर के कलकत्ता सुधार के न्यासियों द्वारा की गई प्रस्तुत अपीलों में आक्षेप किया गया है।

4. हमने उच्च न्यायालय के निर्णय का सम्यक् सावधानी और सतर्कता से परिशीलन किया, जैसी कि उच्च न्यायालय के हर एक निर्णय के बारे में हम से आशा की जाती है, किन्तु हमारी अत्यधिक उत्सुकता और प्रयास के बाबजूद हम उस तर्क को समझने में असमर्थ रहें हैं जिसके कारण उच्च न्यायालय ने धारा 78-ख से 78-जी को और नियम 11 से 21 को अविधिमान्य ठहराया। धारा 78-ए से लेकर धारा 78-जी मूलतः अधिनियमित अधिनियम में नहीं थीं, बल्कि कलकत्ता इम्प्रूवमेण्ट (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1931 द्वारा जोड़ी गई थीं। इन धाराओं में सुधार फीस सम्बन्धित प्रश्नों की एक पूलिका है जिसके द्वारा किसी सुधार स्कीम के बनाए जाने से स्कीम में सम्मिलित क्षेत्र में की किसी भूमि, जो उस कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित नहीं है, का मूल्य बढ़ जाता है। ऐक्ट का अध्याय 3 सुधार स्कीम के बारे में है और धारा 35-डी में यह उपबन्ध है कि सुधार स्कीम चार प्रकार में से किसी एक प्रकार की हो सकती है अर्थात् सामान्य सुधार स्कीम मार्ग स्कीम आवास सुविधा स्कीम और पुनः आवास स्कीम। इन अपीलों में हमारा सरोकार मार्ग स्कीम से है और इसलिए केवल हम उन्हीं उपबंधों के प्रति निर्देश करेंगे जो मार्ग स्कीम

से सम्बन्धित धारा 39 में यह उपबंध है कि जब कभी बोर्ड की यह राय हो कि अन्य बातों के साथ साथ नए संचार साधनों को सृष्ट करने अथवा विद्यमान साधनों में सुधार करने के प्रयोजनार्थ नए मार्गों का बनाया जाना अथवा विद्यमान मार्गों पर परिवर्तन करना समीचीन है तो बोर्ड उस आशय का संकल्प पारित कर सकेगा और उसके पश्चात ऐसे क्षेत्र के लिए जैसा यह उचित समझे मार्ग स्कीम विरचित करने के लिए अग्रसर होगा। जब कोई मार्ग स्कीम विरचित कर ली गई है तो धारा 43 की उपधारा (1) यह अपेक्षा करती है कि बोर्ड इस तथ्य का कथन करने वाली एक सूचना तैयार करेगा कि स्कीम विरचित कर ली गई है, स्कीम में समाविष्ट क्षेत्र की सीमाएं, और वह स्थान जिस पर स्कीम की विशिष्टियां स्कीम में समाविष्ट क्षेत्र का नक्शा और उस भूमि का विवरण जो अर्जित किए जाने के लिए प्रस्थापित है, और वह भूमि जिसके बारे में सुधार फीस वसूल किए जाने की प्रस्थापना है, युक्तियुक्त समय पर देखे जा सकेंगे। धारा 43 की उपधारा (2) इस सूचना के प्रकाशन का उपबन्ध करती है जिसके साथ उस अवधि का कथन भी है जिसके भीतर आपत्तियां प्राप्त की जा सकेंगी। धारा 45 की उपधारा (1) द्वारा यह भी अपेक्षित है कि बोर्ड ऐसे हर एक व्यक्ति पर सूचना की तामील करे जिसका नाम नगर पालिका निर्धारण पुस्तिका में उस व्यक्ति के रूप में आता है, जो संमेकित रेट के अथवा भूधृतियों के वार्षिक मूल्य के आधार रेट में स्वामी के अंश का संदाय करने के लिए मुख्य रूप से ऐसी किसी भूमि की बाबत दायी है जिसके बारे में बोर्ड सुधार फीस वसूल करने की प्रस्थापना करता है। धारा 45 की उपधारा (2) में यह उपबन्ध है कि ऐसी सूचना ऐसे व्यक्ति से, यदि वह सुधार फीस की वसूली से विसम्मत होता है, यह अपेक्षा करेगी कि वह 60 दिन की अवधि के भीतर लिखित में अपने कारणों का कथन करे। उसके पश्चात् धारा 47 की उपधारा (1) में यह उपबन्ध है कि बोर्ड धारा 45 की उपधारा (2) के अधीन प्राप्त सभी सम्बन्धित व्यक्तियों की आपत्ति पर विचार करेगा और सभी व्यक्तियों की जो सुनवाई की इच्छा करें सुनवाई करने के पश्चात् बोर्ड या तो स्कीम का परित्याग कर देगा अथवा ऐसे उपान्तरणों सहित यदि कोई है, जैसा बोर्ड आवश्यक समझे, स्कीम को मंजूर करने के लिए राज्य सरकार से आवेदन करेगा। जब बोर्ड स्कीम की मंजूरी के लिए राज्य सरकार से आवेदन करता है तो धारा 47 की उपधारा (2) के अधीन बोर्ड

से अन्य बातों के साथ-साथ ऐसे सभी व्यक्तियों का नाम भेजने की, जिन्होंने प्रस्थापित सुधार फीस की वसूली से धारा 45 के अधीन विसम्मति प्रकट की है, और ऐसी विसम्मति हेतु दिए गए कारणों का कथन भेजने की अपेक्षा की जाती है। धारा 47 की उपधारा (3) में यह उपबंध है कि जब राज्य सरकार की मंजूरी के लिये कोई आवेदन प्रस्तुत किया गया है तो बोर्ड शासकीय राजपत्र में और समाचारपत्रों में लगातार दो सप्ताह तक इस तथ्य की सूचना प्रकाशित कराएगा। उसके पश्चात् राज्य सरकार धारा 48 के अधीन या तो स्कीम को उपान्तरणों सहित अथवा उपान्तरणों के बिना मंजूर कर लेगी अथवा उसे मंजूरी देने से इनकार कर देगी।

5. इन उपबंधों से यह पता चलेगा कि मार्ग-स्कीम विरचित करने के प्रयोजनार्थ विधानमण्डल ने विस्तृत और विशुद्ध तंत्र का उपबंध किया है। जब कोई मार्ग स्कीम विरचित की जाती है तो मार्ग-स्कीम में समाविष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत दो प्रवर्गों की भूमियां आएंगी। भूमि का एक प्रवर्ग वह है जिनका मार्गस्कीम के कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अर्जित किया जाना आवश्यक है और भूमि का दूसरा प्रवर्ग वह है जिसकी मार्ग स्कीम के लिये आवश्यकता नहीं है किन्तु जिसका मूल्य मार्ग स्कीम के बनने के परिणामस्वरूप बढ़ जाएगा। चूंकि भूमियों का पश्चात्कथित प्रवर्ग का मूल्य बढ़ जाएगा और ऐसी भूमियों के स्वामियों को मार्ग स्कीम बन जाने से फायदा होगा अतः धारा 78 ए मार्ग स्कीम बनाते समय बोर्ड को यह घोषणा करने के लिये सशक्त करती है कि ऐसी भूमियों के स्वामियों द्वारा "स्कीम के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप भूमि के मूल्य में वृद्धि हो जाने के कारण" सुधार फीस संदेय होगी। सुधार फीस की मात्रा क्या होगी यह धारा 78-ए की उपधारा (2) में अधिकथित किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि यह "स्कीम के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप भूमि के मूल्य में वृद्धि के आधे बराबर रकम होगी।" जिसकी संगणना उपबंधित रीति में की जाएगी। धारा 78-बी बोर्ड द्वारा सम्बद्ध व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिए जाने के पश्चात् सुधार फीस के निर्धारण का उपबंध करती है और यदि ऐसा व्यक्ति बोर्ड द्वारा किये गए निर्धारण से विसम्मति प्रकट करता है तो उस मामले यह अपेक्षा की जाती है कि उसका अवधारण धारा 78-सी में उपबन्धित रीति में मध्यस्थों द्वारा किया जाए। उस धारा में मध्यस्थों के चुनाव और नियुक्ति के तंत्र का और उनके द्वारा सुधार फीस की रकम अवधारित करने वाला पंचाट दिए जाने का अति सावधानीपूर्वक ब्यौरा

1977(5) eILR(PAT) SC 365

दिया गया है। मध्यस्थों को दी जाने वाली फीस का उपबंध धारा 78-डी में किया गया है और धारा 78-ई में यह घोषणा की गई है कि मध्यस्थों की कार्यवाहियां धारा 137 के अधीन इस निमित्त बनाए जाने वाले नियमों द्वारा शासित होंगी परन्तु यह कि ऐसी कार्यवाही का हर एक पक्षकार या तो व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने प्राधिकृत अभिकर्ता के रूप में मध्यस्थों के समक्ष हाजिर हो सकेगा। धारा 78-एफ में बोर्ड द्वारा उन व्यक्तियों को सूचना दिए जाने का उपबंध किया गया है जो, यथास्थिति बोर्ड अथवा मध्यस्थों द्वारा अवधारित सुधार फीस का भुगतान करने के दायित्वाधीन है और धारा 78-जी सुधार फीस के बारे में उपबन्ध करती है। प्रश्न यह है कि क्या धारा 78-ए से 78-जी अधिकारातीत हैं और इसलिये शून्य हैं कि उनमें विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का अथवा संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का दोष है।

6. पहले हम नियम 11 से 21 तक की विधिमान्यता की परीक्षा करेंगे। ये नियम उन नियमों का भाग हैं जो राज्य सरकार ने धारा 137 के खण्ड (3 ए) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने में कार्य करने का दावा करते हुए बनाए हैं। धारा 137 में यह खण्ड 1931 के संशोधन अधिनियम द्वारा उसी समय जोड़ा गया था जब धारा 78-ए से धारा 78-जी अधिनियमित की गई थीं और इस ने राज्य सरकार को अन्य बातों के साथ मध्यस्थ की अर्हताएं और निरर्हताएं और उसके निर्वाचन, चुनाव अथवा नियुक्ति की शर्तों और पद्धति को अवधारित करने के लिये और धारा 78-बी के अधीन मध्यस्थों की कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए सशक्त किया। राज्य सरकार को यह शक्ति धारा 86 के अधीन इसे प्रदत्त शक्ति के अतिरिक्त प्रदत्त की गई थीं। नियम 1 में परिभाषाएं हैं जब कि नियम 2 से 11 में मध्यस्थ की अर्हताओं और निरर्हताओं का तथा उनके निर्वाचन, चुनाव और नियुक्ति की शर्तों और पद्धति का उपबंध किया गया है। वस्तुतः यह समझना कठिन है कि उच्च न्यायालय ने नियम 11 को अविधिमान्य किस प्रकार ठहराया। इस में उस दशा में मध्यस्थ की नियुक्ति के तंत्र का उपबन्ध किया गया है, जब आक्षेपकर्ता किसी मध्यस्थ का निर्वाचन करने में विफल रहे। वह उचित रूप से और पूरी तरह से धारा 137 के खण्ड (3-ए) के निबंधनों के भीतर आता है। नियम 11 से लेकर 21 मध्यस्थों की कार्यवाहियों को विनियमित करने वाली प्रक्रिया अधिकथित करते हैं

और वे धारा 137 के खण्ड (3-ए) के पश्चात्कथित भाग के पूरी तरह से भीतर आते हैं जिसमें यह कहा गया है कि वे नियम "धारा 78-सी के अधीन मध्यस्थ की कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए है।" उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों के प्रति सर्वाधिक सम्मानपूर्वक हमारा यह विचार है कि यह दलील देना असंभव है कि नियम 11 से 21 धारा 137 के खण्ड (3-ए) की राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति से बाहर हैं। यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित कलकत्ता इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट मैन्युअल के एक उद्धरण का अवलम्ब लिया था जिस में यह कथन है कि सरकार द्वारा वे नियम स्वायत्त शासन विभाग की अधिसूचना—तारीख 5 मई, 1934 में सुधारफीस के तय किए जाने के लिए मध्यस्थों के नाम निर्देशनों के बारे में कलकत्ता इंम्प्रूवमेन्ट ऐक्ट, 1911 की धारा 137 के अधीन विरचित किए गए थे। उससे यह उपदर्शित होता है कि धारा 78-सी के अधीन किसी मध्यस्थ की कार्यवाही को विनियमित करने वाले नियम इन नियमों के क्षेत्र के भीतर नहीं आते हैं। तो भी धारा 138 के अधीन विरचित नियमों के नियम 11 से 23 के अन्तर्गत ऐसा क्षेत्र आ जाता है जो सुधार फीस के तय किए जाने के लिए मध्यस्थ के नामनिर्देशन के विषय से बहुत परे है और इस कथन के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि "नियम 11 से 21 उस प्रयोजन के क्षेत्र से बाहर है जिसके लिए राज्य सरकार ने धारा 137 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है।" वस्तुतः यह नियम 11 से 21 को इसलिए अविधिमान्य ठहराने हेतु कि वे धारा 137 के खण्ड (3-ए) के अधिकारातीत हैं, बहुत ही अजीब तर्क है। इन नियमों की विधिमान्यता निर्णय इस प्रश्न के प्रति निर्देश करके करना होगा कि क्या वे धारा 137 के खण्ड (3-ए) के अधीन प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति के प्रविषय के भीतर आते हैं न कि ऐसी किसी राय के आधार पर जो कलकत्ता इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट मैन्युअल के लेखक ने व्यक्त की हो। जब यह बात सन्देह से परे स्पष्ट हो जाती है कि धारा 137 का खण्ड (3-ए) राज्य सरकार को धारा 78 सी के अधीन मध्यस्थों की कार्यवाही को विनियमित करने वाले नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है और नियम 11 से 21 सहज रूप से उस प्रवर्ग के भीतर आते हैं तो हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि उनके बारे में यह ठहराना किस प्रकार सम्भव है कि वे राज्य

सरकार को प्रदत्त की गई नियम बनाने की शक्ति से बाहर हैं। राज्य सरकार ने विमर्शित रूप से और प्रकट रूप से धारा 137 के खण्ड (3-ए) के अधीन अपनी नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग किया है और मध्यस्थों की कार्यवाहियों को विनियमित करने के लिए नियम 11 से 21 बनाए हैं। उच्च न्यायालय ने धारा 86 के प्रति भी निर्देश किया और नियम 11 से 21 को इस आधार पर अविधिमान्य ठहराया है कि वे तात्पर्यित रूप से धारा 86 के अधीन नहीं बनाए गए हैं। जिस एक मात्र उपधारा के अधीन, उच्च न्यायालय के अनुसार, धारा 78-ए से धारा 78-जी के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाए जा सकते थे किन्तु धारा 86 के प्रति निर्देश स्पष्टतः भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि वह धारा "इस अध्याय के प्रयोजनों" को पूरा करने के लिए नियम बनाने की शक्ति राज्य सरकार को प्रदत्त करती है और धारा 86 अध्याय 5 में होने के कारण "इस अध्याय" शब्दों का निर्देश केवल अध्याय 5 के प्रति हो सकता है न कि अध्याय 4 के प्रति, जिसमें धारा 78-ए से धारा 78-जी हैं। अतः प्रकटतः, धारा 78-ए से धारा 78-जी के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए धारा 86 के अधीन कोई नियम नहीं बनाए जा सकते थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाने में स्पष्ट रूप से भूल की है कि नियम 11 से लेकर 21 ऐक्ट के अधिकारातीत हैं। यह ऐसा दृष्टिकोण है, जिसकी पूरी तरह से कोई प्रतिरक्षा नहीं की जा सकती है और यहां तक कि प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने इस का समर्थन करना कठिन समझा है।

7. इससे हम धारा 78-ए से धारा 78-जी की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर आते हैं। इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण भी समझना मुश्किल है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने यह समझा कि इन धाराओं में विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का रोष है क्योंकि "यह अवधारित करने के लिए कि उस फीस (अर्थात् सुधार फीस) का भार किस भूमि पर होगा।" "न्यास अथवा इसके इंजीनियरों को ऐसी भूमि को स्कीम में सम्मिलित करने अथवा न सम्मिलित करने की, जो उसके कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित नहीं है, मनमानी और अनियंत्रित शक्ति दी गई है।" और "न्यास और अथवा इसके कर्मचारी मनमाने तौर पर यह अवधारित करने वाले बन जाते हैं कि स्कीम में समाविष्ट क्षेत्र का विस्तार क्या होगा क्योंकि उनको

स्कीम में उन भूमियों को सम्मिलित करने के लिए समर्थ बनाया गया है, जो स्कीम के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित नहीं है।" यह तर्क स्पष्ट रूप से भ्रामक आधार वाक्य पर आधारित है। यह कहना सही नहीं है कि स्कीम के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित भूमि के अलावा बोर्ड और/अथवा इसके कर्मचारियों को यह विनिश्चित करने की अनियंत्रित और मनमाना विवेकाधिकार दिया गया है कि स्कीम में कौन सी भूमि सम्मिलित की जानी चाहिए। धारा 39 जिसके प्रति हम पहले निर्देश कर चुके हैं, उन तथ्यों को अधिकथित करती है जो यह विनिश्चित करने में बोर्ड का मार्गदर्शन करेंगे कि स्कीम में किस क्षेत्र को सम्मिलित किया जाना चाहिए। केवल उसी समय जब बोर्ड का यह निष्कर्ष हो कि धारा 39 में उपवर्णित चार में से किसी भी एक को क्रियान्वित करने के लिए नया मार्ग बनाने अथवा विद्यमान मार्ग में परिवर्तन करना समीचीन है तो बोर्ड ऐसे क्षेत्र के लिए जैसा यह ठीक समझे, स्कीम विरचित करने के लिए अग्रसर हो सकेगा और इस लिए बोर्ड द्वारा क्षेत्र के चुनाव का मार्गदर्शन उन प्रयोजनों द्वारा होगा जिनके लिए स्कीम विरचित की जानी है। तो भी स्कीम में सम्मिलित किए जाने वाली भूमियों के बारे में बोर्ड का विनिश्चय अंतिम नहीं होता है। यदि स्कीम के बनाए जाने के परिणामस्वरूप स्कीम में सम्मिलित किसी भूमि का मूल्य बोर्ड की राय में बढ़ जाता है और इसलिए भूस्वामी द्वारा सुधार फीस संदेय है तो उसे ऐसी सुधार फीस की वसूली से विसम्मत होने का और ऐसी विसम्मति के लिए अपने कारणों का कथन करने का अवसर दिया जाता है और उसके पश्चात् बोर्ड से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसकी सुनवाई करे और अन्ततोगत्वा यदि समुचित मामला सिद्ध कर दिया जाता है तो बोर्ड ऐसे भूमियों को अपवर्जित करके स्कीम को उपांतरित करे और यहां तक कि यदि बोर्ड ऐसा कोई उपांतरण करना नहीं चाहता है तो राज्य सरकार मंजूरी देते समय भूस्वामी की विसम्मति पर विचार कर सकेगी और उसके द्वारा दिए गए कारणों पर विचार कर सकेगी और यदि उसका समाधान हो जाता है तो मंजूरी देते समय स्कीम में से ऐसी भूमि को निकाल सकेगी अतः यह विदित होगा कि स्कीम में सम्मिलित किए जाने के लिए भूमि का चुनाव करने में बोर्ड को न केवल मार्गदर्शन दिया जाता है बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कीम में कोई भूमि मनमाने तौर पर अथवा स्वेच्छापूर्वक न मिला ली जाए सुरक्षापायों का

भी उपबंध किया गया है। यहां तक कि राज्य सरकार द्वारा स्कीम को मंजूर किए जाने के पश्चात् भूस्वामी में यह दर्शित कर सकता है कि उस भूमि के मूल्य में स्कीम में मिलाए जाने के कारण वृद्धि नहीं होगी। सुधार फीस भूमि के मूल्य में वृद्धि से सहसंबंधित होने के कारण धारा 78-बी के अधीन सुधार फीस की रकम निर्धारित करते समय बोर्ड को वस्तुपरक रूप से यह अवधारित करना होगा कि क्या भूमि के मूल्य में कोई वृद्धि हुई है और यदि हां तो वह उस आधार पर सुधार फीस की रकम का निर्धारण करेगा यदि भूस्वामी बोर्ड द्वारा किए गए निर्धारण से विसम्मत रहता है तो वह उस मामले को मध्यस्थों को निर्देशित कर सकता है और तब मध्यस्थ सुधार फीस की रकम का अवधारण करेंगे और ऐसा करते समय उन्हें स्वाभाविक रूप से यह पता लगाना होगा कि क्या भूमि के मूल्य में किसी प्रकार की कोई वृद्धि हुई है और यदि हुई है तो ऐसी वृद्धि की मात्रा क्या है। स्कीम के अधीन भूस्वामी को धारा 78-ए से धारा 78-जी के अधीन इस प्रश्न का दो स्वतंत्र मध्यस्थों के निकाय द्वारा अवधारित कराने का अवसर दिया जाता है जो वस्तुपरक रूप से यह अवधारित करेंगे कि क्या स्कीम में मिलाए जाने के परिणामस्वरूप भूमि के मूल्य में कोई वृद्धि हुई है। ये सुसंगत उपबंध हैं अतः यह समझ पाना कठिन है कि धारा 78-ए से लेकर धारा 78-जी के बारे में यह कैसे माना जा सकता है कि उनमें विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन का दोष है। संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिलंघन के आधार पर इन धाराओं की विधिमान्यता के विरुद्ध की गई आपत्ति भी विफल हो जाती है क्यों कि अनुच्छेद 14 के अधीन आपत्ति विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार पर है। अतः हमारा यह दृष्टिकोण है कि धारा 78-बी से धारा 78-जी विधिमान्य हैं और उच्च न्यायालय द्वारा उनको अधिकारातीत और शून्य बताते हुए अविधिमान्य ठहराना गलत है।

8. हम इस मामले को अन्तिम मत व्यक्त किए विना समाप्त नहीं कर सकते। इस मामले में उठाया गया संविधानिकता का निर्विवाद रूप से सूक्ष्म विस्तार जो कुछ हम कह चुके हैं उससे प्रकट है। इस न्यायालय का देश के प्रति दोहरा उत्तरदायित्व है। इसे इसके समक्ष लाए गए मामले को न्यायसंगत रूप से और समाधानप्रद रूप से विनिश्चित करना होता है और साथ ही बहुत से लम्बित मामलों को समाप्त करना होता

है। दोनों ही न्यायिक पद्धति की विश्वसनीयता से संबंधित हैं। 42 वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़े गए अनुच्छेद 144-क के कारण इस न्यायालय के सात न्यायाधीशों को ऐसे हर एक मामले में बैठने और सुनवाई करनी होती है जिसमें किसी अधिनियम, नियम, उपविधि और यहां तक कि छोटी सी अधिसूचना पर आपत्ति की गई हो। इस न्यायालय के कार्याकरण के वास्तविक अनुभव के प्रकाश में प्रक्रियात्मक व्यावहारिकता सुगमता से विश्वास दिला सकती है कि कार्य सूची के विस्तार और मामलों के बहुत दिनों से लम्बित होने के वर्तमान संदर्भ में, इस असुविधाजनक बहुसंख्य न्यायाधीशों के प्रति आग्रह, जो न्यायालय के आधे से अधिक न्यायाधीशों को ऐसे मामलों में सुनवाई के लिए न्यायपीठ गठित करने की अपेक्षा करता है, प्रतिकूल दिशा में एक निश्चित कदम है। सांविधानिक महत्व के बहुत से प्रश्न पहले ही इस न्यायालय के विनिर्णयों के अन्तर्गत आ गए हैं जिससे कि जो उन प्रश्नों को उठाता है और उनका अध्ययन करता है वह उनको हल भी कर सकता है। ऐसे कार्य को करने के लिए सात न्यायाधीशों की अपेक्षा करना निश्चित रूप से अपेक्षित कर्त्तव्य से अधिक कार्य करने वाली बात होगी प्रस्तुत अपील स्वयं में एक ज्वलन्त दृष्टान्त है। जब कभी वस्तुतः महत्वपूर्ण विवाद्यक विनिश्चयार्थ उत्पन्न हों तो इस न्यायालय का न्यायपीठ जहां कहीं आवश्यक हो निश्चित रुप से ऐसे मामले की स्थिति की अपेक्षा के अनुसार सात से कम अथवा अधिक की बृहत न्यायपीठ को विचारार्थ अथवा पुनः विचारार्थ निश्चित रूप से निर्देशित करेगा। संख्या विहित करना कल्पनातीत रूप से स्तम्भित करना है। हम अनुच्छेद 144-क की विधिमान्यता के बारे में हां अथवा ना के रूप में कुछ भी नहीं कह रहे हैं, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय और न्याय के बृहत्तर हित के 42 वें संशोधन अधिनियम द्वारा नए तौर पर अन्तःस्थापित इस बहु संख्या की कठोरता से होने वाले कठोर प्रभाव पर मात्र प्रकाश डाल रहे हैं। हमें आशा और विश्वास है कि इस विषय पर संसद् तत्काल ध्यान देगी।

9. तदनुसार हम अपीलें मंजूर करते हैं और प्रत्यर्थियों के रिट पिटीशन खारिज करते हैं। प्रत्यर्थी अपीलार्थियों के आद्योपान्त खर्चे देंगे।

अपीलें मंजूर की गई।

श०